Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 1
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

प्राचीन भारतीय श्रेणी संगठन का स्वरूप एवं दायित्व

डॉ0 विजय कुमार
विभाग प्रभारी एवं असि0 प्रोफेसर – प्राचीन इतिहास विभाग, इ0 सि0 स0 सं0 से0 राजकीय महाविद्यालय, पचवस, बस्ती।

Article Info
Publication Issue :
January-February-2024
Volume 7, Issue 1

Page Number : 22-27

Article History
Received : 15 Jan 2024
Published : 30 Jan 2024

शोध सारांश – श्रेणी संगठन प्राचीन भारतीय व्यापारी संगठन थे, जो अपनी परम्पराएं विधि आदि के लिए स्वतंत्र थे। इनको वैधानिक अधिकार भी प्राप्त था इसीलिए कौटिल्य ने अक्षयपराध्यक्ष को श्रेणियों के नियमों और परम्पराओं को पुस्तकस्थ करने का आदेश दिया था। इनकी अपनी सेना होती थी जिसे श्रेणी बल कहते थे। संगठन से प्राप्त आय सभी सदस्यों में बाँटी जाती थी। श्रेणी प्रधान भी अपराध के लिए दण्डित होता था। ये किसी भी कार्य के लिए स्वतंत्र थे। राज्य इनके कार्यों का निरीक्षण करता था। हिसाब के लिए अध्यक्ष नियुक्ति था जो कार्य और आय–व्यय का हिसाब रखता था। श्रेणियों के पास धन जमा करने तथा आवश्यकता पर निकालने का कार्य उनके बैंकिंग स्वरूप का बोधक है। आर्थिक संकट में राज्य श्रेणियों से मुद्राएं तथा स्वर्ण सिक्के भी उधार लेता था। इनसे राज्य कर लेता था जिससे पर्याप्त आय होती थी। कुछ लोग इनके पास अक्षयनिधि जमा करते थे, जिसके ब्याज से ये जमाकर्ता का इच्छित कार्य करे रहते थे। इसके सदस्य तथा जनता अपनी अधिक बचत इन्हीं के पास जमा करती थी। ये इस पर उनको प्रोत्साहन देने के लिए सूद देती थी तथा जमा धन को सूद कमाने एवं व्यापार की वृद्धि के लिए दूसरे इच्छुक व्यवसायियों को दे देती थी जिस पर उनसे कर लेती थी। गौतम धर्मसूत्र से ज्ञात होता है कि कृषकों, व्यापारियों, चरवाहों, सूद पर धन देने वालों तथा कारीगरों को अपनी–अपनी श्रेणी के सदस्यों के लिए नियम बनाने का अधिकार था। श्रेणियॉ जनकल्याणकारी कार्य करती थीं यथा– निर्धन व्यक्तियों को सहायता, जन्म, विवाह, अन्त्येष्टि आदि में, भवनों के निर्माण में तथा जीर्णोद्वार में भी यह हाथ बटाती थी। श्रेणी एक प्रकार के व्यावसाय करने वालों का संघ होती था। ये अपने परिवार के लड़कों के प्रशिक्षण की व्यवस्था स्वयं करते थे। बड़े व्यावसायियों के यहाँ श्रेणियाँ कार्य सीखने के लिए इन बालकों को भेजती थी। कौटिल्य के मतानुसार राजा को श्रेणी धर्म का आदर करना चाहिए। विष्णु ने भी कहा है कि राजा संघों में प्रचलित रीति–रिवाजों का पालन करवाये। आवश्यकता पड़ने पर राजा श्रेणियों द्वारा रखे गये योद्धाओं (श्रेणी बल) का भी उपयोग करता था। श्रेणियों से राज्य प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में पूर्ण सहयोग की अपेक्षा की जाती थी तथा जो श्रेणी सदस्य श्रेणी–धर्म का पालन नहीं करता था राजा उसे दण्ड देता था। प्राचीन भारत में श्रेणीयों का महत्व एवं दायित्व काफी व्यापक था।

कूट शब्द – श्रेणी बल, सेट्ठि, अनुश्रेष्ठि, चुल्ल श्रेष्ठि, सेठिठ्त्थान, रूपदर्शक, श्रेणी–बैंक।

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

श्रेणी शब्द व्यापारियों या शिल्पियों के संगठन का परिचायक है (1)। यह परवर्ती काल में व्यापारियों के संगठन का द्योतक निगम बन गया था(2)। उच्चवर्णो के शोषण से वैश्यों ने अपने व्यापारिक हितों की रक्षा के लिए स्वयं को व्यवसायिक संगठनों में संगठित किया था तथा श्रेणियों के उद्भव का एक अन्य महत्वूपर्ण कारण उत्तरवैदिक काल मे व्यापार तथा उद्योग धन्धों का स्थानीकरण था। जातक ग्रन्थों में दन्तकारवीथि (हाथी दाँत के कारीगरों का निवास स्थल), उप्पलवीथि (कमल बेचने वालों का स्थान), रजकवीथि (धोबियों के स्थान) आदि का उल्लेख है, यथा– बनारस के निकट एक हजार परिवारों वाला बढ़इयों का एक बड़ा नगर था(3)। अर्थशास्त्र(4) के अनुसार गंध, माल्य, अन्न, घृत आदि के व्यवसायी नगर के पूर्वी; पक्वान्न, सुरा, माँस के व्यवसायी दक्षिणी व जुलाहे, मणिकार आदि उत्तरी भाग में निवास करते थे। व्यापार व वाणिज्य में वृद्धि होने के कारण उत्पादन तथा वितरण की समुचित व्यवस्था व अधिक पूँजी निवेश की आवश्यकता ने श्रेणियों को जन्म दिया। चोर, डाकुओं तथा अन्य आपादाओं से व्यवसाय की सुरक्षा तथा सामूहिक लाभ की इच्छायें भी श्रेणियों के उदय का कारण बनी।(5) गौतम धर्मसूत्र(6), महावस्तु(7) व जातकों(8) में विभिन्न वस्तुओं के व्यापारियों की श्रेणी के रूप मे संगठित होने की सूचना मिलती है। अष्टाध्यायी(9) के अनुसार न केवल औद्योगिक संगठन अपितु राजनैतिक संगठन को भी श्रेणी कहते थें। महाभारत(10) व रामायण(11) में भी श्रेणी शब्द का उत्तरवैदिककालीन ग्रन्थों में श्रेष्ठिन् शब्द के प्रयुक्त होने से यह आभास मिलता है कि उस समय उद्योगों व व्यापारियों के संगठन विद्यमान थे। लोगों का विश्वास था कि व्यक्तिगत प्रयास से धन का अर्जन सम्भवः नही है बल्कि सहकारी संस्थाएँ ही उनके उद्देश्यों को पूर्ण कर सकती हैं। इससे स्पष्ट है प्राचीन भारतीय अपनी उन्नति के लिए निश्चित नियमों वाले, श्रेणी, संघ या निगम के संघटन के महत्व को पूर्णतः समझते थे।(12)

व्यापारियों की श्रेणियों के अध्यक्ष को प्रारंभिक पालि ग्रन्थों में श्रेष्ठी शब्द से सम्बोधित किया गया है। श्रेणियों में भांडागरिक नामक एक पद होता था जिस पर नियुक्त व्यक्ति वस्तुओं का निरीक्षण करते थे और उन्हें बिकने से पूर्व संभालकर उनका थे भण्डारण करते थे। श्रेणियों को सीमित सीमा तक प्रशासकीय अधिकार मिले हुए जैसे कि चोर स्त्री को बिना अधिकारियों की अनुमति के भिक्षुणी न बनाया जाय। वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार सम्पत्ति के स्वामित्व के मामलों और दस्तावेजों में विरोधी बातें हो तो वृद्धपुरूषों, निगमों और श्रेणियों के साक्ष्य को महत्व देना चाहिए। मौर्यकालीन लेखाध्यक्ष को नियमित रूप से निर्धारित दस्तावेजों में निगमों की प्रथाओं और नियमों को लिखना आवश्यक था।(13) श्रेणियों से शुल्क एकत्रित करने के लिए तीन आयुक्त मौर्यकाल में नियुक्त होते थे। आर्थिक संकट के समय राजा निगमों की संपत्ति उधार ले सकता था। रामायण व महाभारत में उल्लेखित श्रेणियों को इतने अधिकार प्राप्त थे कि राजा भी उनके नियमों के विरूद्ध कोई कानून नहीं बना सकता था तथा राजा इन श्रेणियों के अध्यक्षों का अत्याधिक आदर करता था। श्रेणी बल राजकीय शक्ति के प्रमुख आधार थे।(14) शत्रु राज्य को पराजित करने के लिए उसके श्रेणी मुख्यों में वैमनस्य उत्पन्न को महत्वपूर्ण माना गया। नगर के व्यापारियों की श्रेणी का अध्यक्ष नगर–श्रेणी कहलाता था।(15) श्रेणियों ने शनैः शनैः अपने नियमों का विकास किया था। नारद और वृहस्पति ने श्रेणियों के अनेक नियमों की विवेचना की है तथा याज्ञवल्क्य ने यहाँ तक लिखा है कि श्रेणी या निगम के जो भी नियम धर्म विरूद्ध न हों और राजा द्वारा बनाये हुए नियमों के हों तो अत्यन्त सावधानी के साथ सबसे उनका पालन करवाना चाहिए। स्पष्ट अनुकूल है कि प्राचीन भारतीय प्रशासन में श्रेणी – नियमों का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान था जो राज्य, राजा व प्रजा के प्रति उत्तरदायी थे। श्रेणीयाँ शासन के संचालन में भाग लेती थी तथा इनके संघटन अत्यन्त शक्तिशाली थे।

श्रेणियों को अपने व्यवसाय के विषय में नियम बनाने के अधिकार के साथ–साथ सीमित सीमा तक न्यायिक अधिकार भी प्राप्त थे। नारद व वृहस्पतिस्मृति के अनुसार सामान्यतः राजा श्रेणी के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करता था परन्तु श्रेणी की कार्यकारिणी नियमों के अनुसार किसी सदस्य को जो भी दण्ड देती थी उसके अनुपालन का उत्तरदायित्व राजा का था। राजा श्रेणी सदस्यों द्वारा श्रेणी के हितों को हॉनि पहुँचाने के कार्यकलापों को रोकता था। राजा को श्रेणियों की अनैतिक या राज्य–विरोधी गतिविधियों को रोकने का भी अधिकार था। मैकडानल(16) महोदय के अनुसार सम्भवतः श्रेष्ठि शब्द श्रेणि के प्रधान का द्योतक है। श्रेष्ठि एवं सेट्ठि शब्दों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है और दोनों ही बैंकर के सूचक हैं।(17) बौद्ध ग्रन्थ(18) श्रेष्ठि को उसकी सम्पन्नता के घटते क्रम में क्रमशः महाश्रेष्ठि, अनुश्रेष्ठि एवं चुल्ल श्रेष्ठि में बाँटते हैं। छोटे–छोटे कस्बों और ग्रामों के साधारण श्रेष्ठि संभवत जनपद श्रेष्ठि कहलाते थे। गुप्तकालीन अभिलेखों में नगर– श्रेष्ठ का उल्लेख मिलता है।(19) गुप्तकालीन श्रेष्ठि व्यापार योग्य वस्तुओं का क्रय और विक्रय करने के साथ ही उत्पादन में वृद्धि के लिए पूँजी का निवेश भी करते थे।(20) जातक कथाओं से पता चलता है कि विभिन्न प्रकार के शिल्पियों के अपने ग्राम थे शिल्पी ग्राम अपने प्रधान के नेतृत्व में संगठित थे।

श्रेणियों के प्रधान को प्रायः बौद्ध साहित्य में जेटठ्क कहा गया है। श्रेणी संगठन प्रायः गणतन्त्रात्मक स्वरूप के होते थे तथा प्रायः प्रत्येक श्रेणी का अपना कार्यालय होता था। नारद के अनुसार कार्यालय में सदस्यों की उपस्थिति के लिए कुछ नियम निश्चित थे, जिसे राजा को मान्यता देनी पड़ती थी। ढोल या अन्य वाद्य यन्त्रों को बजाकर सदस्यों को यह सूचित किया जाता था कि वे निश्चित समय पर उपस्थित होकर समस्याओं पर विचार करें। श्रेणियाँ समय (संविदा) को पालन पर विशेष बल देती थीं। ये संविदा सम्बन्धी नियमों का कठोरतापपूर्वक पालन करती थीं। धम्मपद अट्ठकथा से पता चलता है कि श्रावस्ती के सेठिठ् आनन्द बाद राजा ने उसके पुत्र मूलश्री को नगर सेठिठ् बनाया था। इससे इस पद के वंशानुगत होने का पता चलता है। इसके साथ ही नगर सेठिठ् की नियुक्ति में राजा की महत्वपूर्ण भूमिका भी स्पष्ट होती है। श्रेणी संगठन की प्रबन्ध समिति भी होती थी, जिसके सदस्य कार्य निपुण, सत्यभाषी, कर्त्तव्यशील, ज्ञाता, योग्य तथा उच्चकुल का होते थे। प्रत्येक सेट्ठि का अपना कार्यालय होता था जिसे सेठिठ्त्थान (श्रेष्ठ स्थान) कहते थे। श्रेणियों में प्रचलित कानूनों तथा रीतिरिवाजों को श्रेणीधर्म की संज्ञा दी जाती थी। इन्हें राज्य की ओर से वैधानिक मान्यता मिली हुई थी। प्रत्येक सदस्य अनिवार्य रूप से इनका पालन करता था और इनका उल्लंघन बहुत बड़ा अपराध था। श्रेणी के अध्यक्ष की सहायतार्थ दो, तीन या पाँच प्रबन्धक या कार्य–अधिकारी होते थे। विद्वेषी व्यसना संकोची, अकर्मण्य, कायर, कंजूस, अधिक वृद्ध और बहुत कम उम्र के बालक को कार्यकारिणी का सदस्य नही बनाया जा सकता था।

श्रेणी का प्रधान, धर्मानुसार अपने सदस्यों के साथ कड़ा या मृदु जैसा भी व्यवहार करते थे, उसे राजा को अनुमोदित करना पड़ता था। मनु के अनुसार राजा को जाति–धर्म, कुल–धर्म, जनपद–धर्म, श्रेणी–धर्म की भली–भाँति छान–बीन करने के पश्चात् ही उनके अनुकूल अपने राजकीय नियमों की स्थापना करनी चाहिए। दण्डित सदस्य राजा के पास अपील कर सकता था तथा अगर सदस्य को किसी द्वेष से युक्त होकर हाँनि पहुँचायी गयी हो तो राजा हस्तक्षेप कर दोषी व्यक्ति को दे सकता था। श्रेणियों के नियमों तथा उनके संगठनात्मक ढांचे पर विभिन्न स्थलों पर प्रकाश डाला गया है। श्रेणियों को

न्यायिक अधिकार प्राप्त थे।(21) ये अपने सदस्यों के आपसी विवादों में न केवल फैसला करती बल्कि अपराधी सदस्य पर दण्ड भी लगाती थी। उच्च नैतिकता की साख के कारण य गुप्त काल तक आते–आते अन्य वर्गों के लागों को भी न्याय प्रदान करने लगी। नारद ने श्रेणी का स्थान चार सामान्य न्यायालयों में दूसरा बताया है। याज्ञवल्क्य ने न्यायालयों की कोटि में कूल, श्रेणी तथा पूग की गणना की है। बृहस्पति के अनुसार कुल–न्यायालय के विरूद्ध श्रेणी न्यायालय में तथा श्रेणी–न्यायलय के विरूद्ध पूग–न्यायालय में अपील की जाती थी।

मौद्रिक प्रणाली की उत्पत्ति श्रेणी जैसी आर्थिक संघों की आवश्यकताओं के फलस्वरूप हुई थी।(22) मौर्यकालीन साम्राज्यवादी व्यवस्था में भी इन संस्थाओं को मुद्रा निर्मित करवाने का अधिकार था।(23) यथा– प्रयाग के समीप भीटा नामक स्थान की खुदाई से मौर्यन ब्राह्मी में सहजाति निगमस् अंकित एक मिट्टी की मुद्रा मिली है। कौटिल्य ने दो प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख किया है– प्रथम व्यापार में प्रयुक्त होने वाली मुद्रा (व्यवहारिकी) और द्वितीय खजाने में संग्रह करने वाली (कोश प्रवेश)। रूपदर्शक (सिक्कों का निरीक्षक) अनियमित मुद्रा के प्रचलन को रोकता था। इससे स्पष्ट है कि आर्थिक संस्थाओं द्वारा प्रचलित मुद्राए राज्य को स्वीकृत थी। अर्थशास्त्र में सिक्का निर्मित करने पर 25 पण के दण्ड का विधान है, जिसे कांगले महोदय मुद्रा बनाने के लिए श्रेणियों से लिया जाने वाला लाईसेन्स शुल्क मानते हैं।(24) इन मुद्राओं पर अंकित चिन्ह, उनकी शुद्वता और सही तौल की जमानत बड़े व्यापारियों, श्रेणियों और राज्य द्वारा ली जाती थी, जो इन्हें चलाते थे। भीटा (इलाहाबाद) व कौशाम्बी से व्यापारिक श्रेणियों द्वारा निर्मित सिक्के मिले हैं। बसाढ़ (वैशाली) से महाजनों, व्यापारियों और माल की ढुलाई करने वाले वणिकों की सयुक्त श्रेणी की 274 मुहरें मिली हैं।

श्रेणियाँ बैंक के रूप में कार्य करती थीं। ये ऋण देती थी और व्याज सहित वसूल करती थीं। ऋण देने का प्रथम उल्लेख अर्थशास्त्र में है, जिसमें कहा गया है कि यदि राजा विशेष आर्थिक संकट में हो तो वह ऐसे गुप्तचर का उपयोग करे जो अपनी साख बनाने के उपरान्त इन संस्थाओं से सोने की मुहरे व मुद्राए उधार ले और उसी रात चोरी हो जाने का ढिंढोरा पीटकर सारा माल हड़प ले। शकक्षत्रप नहपान के दामाद उषावदात (ऋषभदत्त) ने गोवर्धन के तंतुवाय (जुलाहा) श्रेणी के पास दो हजार, एक कार्षापण प्रति सैकड़ा (12 प्रतिशत) वार्षिक व्याज की दर पर तथा एक हजार कर्षापण का व्याज दर तीन–चौथाई (9 प्रतिशत) पर जमा किया। इस व्याज को वहाँ के भिक्षुओं पर व्यय किया जाता था। देवविष्णु नामक एक ब्राह्मण ने इन्द्रपुर की तैलिक श्रेणी में निश्चित धन स्थायी रूप से सूर्य के मन्दिर में निरन्तर दीपक जलाने हेतु जमा किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दो किस्तों में 20 दीनार स्थायी रूप से एक श्रेणी के पास जमा करवाया था, जिसके व्याज को दो अनाथालयों को दिया जाता था। कुमारगुप्त प्रथम ने जिसके व्याज भी 13 दीनार और 12 दीनार एक या दो श्रेणियों में जमा किया था, से दो अनाथालयों की निरंतर व्यवस्था होती थी। राष्ट्रकूटों, चोलो व अन्य अभिलेखों में में भी श्रेणियों द्वारा जमा अक्षयनीवियों का उल्लेख मिलता है। श्रेणियाँ समृद्व एवं वैभवपूर्ण होती थी तथा जनता में उनकी अच्छी साख थी। उसे कभी यह भय नहीं था कि श्रेणी–बैंक दिवालिया हो जायेगा तथा उनकी जमा पूँजी मारी जायेगी। राजा लोग भी श्रेणियों में धन जमा करते थें और ऋण लेते रहे होंगे।(25)

श्रेणियाँ धार्मिक तथा लोककल्याणकारी कार्यो को भी करती थीं। सभागृह या धर्मशाला, यात्रियों के लिए प्याऊ, मन्दिर, सरोवर और उद्यान की व्यवस्था तथा निर्धनों को शास्त्रानुमोदित संस्कार का यज्ञकार्य करने में सहायता देने का कार्य श्रेणियाँ करती थीं। अनाज विक्रेताओं ने जुन्नार में एक गुफा तथा एक कुण्ड दान दिया। तन्तुवाय श्रेणी ने मन्दसौर में सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया तथा क्षतिग्रस्त होने पर पुनः उसी ने मरम्मत करवाई। इन्दौर में तैलिक श्रेणी ने तेल और माली श्रेणी ने सूर्य मन्दिर को माला प्रदान करने का दायित्व स्वीकार किया था। पाण्ड्यवंश के राजा जयवर्मन के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि 79 मंडलों के 18 उपविभागों के व्यापारियों ने पण्य से होने वाली आय का एक भाग मन्दिर की मरम्मत पर व्यय करने का निर्णय लिया। चोल काल की एक नानादेशी व्यापारिक संस्था ने वर्मा में तेरहवी शताब्दी में एक विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था।(26) श्रेणियाँ सैनिक भी रखती थी जिसकी ओर आर० सी० मजूमदार ने ध्यान आकृष्ट किया था।(27) अर्थशास्त्र में श्रेणीबल तथा महाकाव्यों में सयोध श्रेणी का इसी सन्दर्भ में उल्लेख हुआ है। अर्थशास्त्र में श्रेणी प्रमुखों का वेतन अश्व, गज तथा सेना के प्रधानों के समकक्ष निर्धारित है। इससे स्पष्ट है कि श्रेणीबल रक्षा तथा आक्रमण दोनों ही कार्यों में राजा की सहायता करता था। स्मृति ग्रन्थों में भी इसका संकेत है। मन्दसौर के पट्टवाय (रेशम बुनने वाली) श्रेणी के लोगों में कुछ धनुर्विद्या में प्रवीण थे। श्रेणियाँ इन्हें अपनी सुरक्षा हेतु रखती थीं। श्रेणी और राजा के मध्य बिचौलियों को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। बहुत सी श्रेणियाँ राज्य की ओर से कर वसूल करती थी तथा मंदिर की सम्पत्ति, पुजारियों की रक्षा और इससे सम्बन्धित गावों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लेती थीं। श्रेणी संगठन ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से सातवी शताब्दी ईस्वी तक पर्याप्त विकास की अवस्था में रहा। राजपूत काल में सामन्तवाद की पराकष्ठा ने उत्तर भारत में इनका ह्रास किया परन्तु दक्षिण भारत में उनका विकास होता रहा।

सन्र्दभ

1. आर०सी० मजूमदार, प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृष्ठ–18 एवं वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ – 435
2. हरि सहाय सिंह, प्राचीन भारत में पंचायती जन समितियाँ, पृष्ठ–40
3. समुददवणिक जातक
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र, दुर्ग–निवेश प्रकरण, 2, 4
5. बृहस्पति स्मृति, 17, 5–6
6. गौतम धर्मसूत्र 11, 20–21
7. महावस्तु अवदानम् , (सं0 सेनार्ट) पृष्ठ 113 और 442
8. पूग–पक्ख जातक, जिल्द, 6, पृष्ठ 14
9. 'श्रेण्यः कृतादिभ।" – पाणिनी, अष्टाध्यायी, 2, 1, 59
10. महाभारत 3, 248, 16 , कर्णपर्व, 5, 40.
11. रामायण, युद्धकांड, 3, 111, अयोध्याकांड, 123
12. बृहदारण्यक उपनिषद, 1, 4, 12
13. आर0 शमशास्त्री, अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य, पृष्ठ– 69

14. महाभारत, आश्रमवासिक पर्व, अध्याय 7, श्लोक 7–9
15. सचीन्द्र कुमार मैटी, इकनोमिक लाइफ नार्दर्न इंडिया इन दि गुप्त पीरिएड, पृष्ठ 156, कलकत्ता, 1957
16. वैदिक इण्डेकस, पृष्ठ–403.
17. एन.सी. बन्घोपाध्याय, इकानामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन ऐन्शेन्ट इंडिया, पृष्ठ – 260.
18. गीता दत्त, प्राचीन भारत में बैंक व्यवस्था, पृष्ठ – 45
19. दामोदरपुर ताम्रपत्र, एपिग्राफिया इंडिया, जिल्द 15, पृष्ठ–130.
20. एस. के. मैती, इकानामिक लाइफ इन नादर्न इंडिया, पृष्ठ–204.
21. गोपाल लल्लन जी, आर्गेनाइजेशन आफ इण्डस्ट्रीज इन एंशियन्ट इण्डिया, 1974 ई0, 22.
22. हरिसहाय सिंह, प्राचीन भारत में पंचायत जन समितिया, पृष्ठ 138
23. हरि सहाय सिंह, प्राचीन भारतीय अर्थतन्त्र में स्वायन्तशासी संस्थाओं की भूमिका (600 ई0 पू0 से 300 ई0 तक)
24. आर० पी० कांगले, द कौटिलीय अर्थशास्त्र ए स्टडी, भाग – 3, पृष्ठ– 181
25. के0 मजूमदार, चालुक्याज आफ गुजरात, पृष्ठ –
26. के, ए0 नीलकंठ शास्त्री, चोलवंश, पृष्ठ 462
27. आर0सी0 मजूमदार, प्राचीन भारत में संघठित जीवन, पृष्ठ– 30